प्रश्न काल का प्रश्न

संसद में प्रश्न काल को काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह वह समय होता है , जब सांसद महत्वपूर्ण मुद्दों पर सीधे मंत्रियों से पूछताछ या वाद-विवाद कर सकते हैं । इसके होने से संसद जैसी लोकतांत्रिक संस्था की सशक्त कार्यकारिणी को जवाबदेह बनाया जा सका है। संसद के मानसून सत्र में सरकार ने कोविड-19 का हवाला देते हुए प्रश्नकाल को अस्थायी रूप से स्थगित रखने का निर्णय लिया । इसके विकल्प के रूप में मंत्रियों से लिखित प्रश्न पूछे जाने की छूट दी गई है , जिसके उत्तर भी लिखित ही प्राप्त किए जा सकते हैं।

कोविड के बहाने संसद के इस महत्वपूर्ण भाग का प्रतिबंधित किया जाना , लोकतांत्रिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। देश में स्वास्थ्य सेवाओं और बेरोजगारी की स्थिति पर आपातकाल जैसा बना हुआ है। ऐसे समय में जब सरकार को इन क्षेत्रों की वर्तमान स्थितियों और उससे संबंधित सरकारी प्रयासों का तथ्यात्मक ब्यौरा उपलब्ध कराना चाहिए , सरकार का प्रश्नोत्तर काल को स्थगित कर देना उसके अपने बचाव के प्रयास को इंगित करता है। इस माध्यम से एक ऐसी शुरूआत की जा रही है , जो महामारी के समाप्त होने के बाद भी नागरिकों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रता को ग्रसती रहेगी।

महामारी से पहले भी , संसदीय कार्यवाही में वाद-विवाद और प्रश्नोत्तर के क्रमशः घटते समय को महसूस किया जा रहा था। सरकार की ओर से प्रधानमंत्री और विपक्ष का कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति न के बराबर ही उपलब्ध रहे हैं। विपक्षी नेता राहुल गांधी पहले ही अपने पद को छोड़ने पर अड़े हुए हैं। सक्रिय रहते हुए भी उन्होंने 16वीं लोकसभा के प्रश्नोत्तर काल में एक भी प्रश्न नही पूछा था। प्रधानमंत्री मोदी या तो संसद भवन से दूर रहे या फिर महत्वपूर्ण मुद्दों पर हुई चर्चा के दौरान मौन साधे रहे हैं।

प्रमुख नेताओं की संसद में इस प्रकार की निष्क्रियता का मुख्य कारण प्रतिनिधियों के चुनाव और संसद में उनके प्रदर्शन के प्रति नाराजगी है। मीडिया संतृप्त राजनीति ने एक व्यक्तित्व दोष पैदा कर दिया है , जो संसदीय प्रक्रिया को शार्ट सर्किट कर रहा है। राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय चुनाव पार्टी के मुख्य नेताओं के आधार पर लड़े जाते हैं। इस कारण सांसदों और विधायकों की अपनी कोई खास पहचान नही हो पाती। 2014 और 2019 के चुनावों में मोदी लहर ने ही भाजपा को चुनाव जिताया था। इसी प्रकार से बंगाल में ममता बनर्जी हैं।

संसद में प्रश्नोत्तर काल की निरर्थकता का एक बड़ा कारण , हमारे अपने समाज में वाद-विवादों का अमान्यीकरण होना भी है। कोई भी प्रश्न पूछे जाने को राजनीति या एजेंडे से जोड़ दिया जाता है। जब सार्थक वाद-विवाद का महत्व समझा जाएगा , और समाज भी उसे फिर से मान्यता प्रदान करने लगेगा , तभी संसदीय वाद-विवाद की भी , गुंजाइश बनेगी।

एकध्रुवीकृत समाज में संसद दुविधापूर्ण ही हो सकती है। इसका एक उदाहरण हाल ही में फेसबुक विवाद को लेकर देखा जा सकता है। संसदीय समितियों का काम , नागरिकों की समस्याओं को उठाने के लिए बहुपक्षीय सलाह-मशविरा या बैठक करना है। लेकिन यहाँ तो कांग्रेस और भाजपा के नेताओं के तर्क-वितर्क ही मुख्य मुद्दा बने हुए थे।

अक्सर देखा जाता है कि भारी बहुमत वाली सरकारें संसदीय मानदंड़ों की अवहेलना करती हैं। अध्यादेशों को असाधारण स्थितियों में लाया जाता था , परंतु आज उन्हें जल्दबाजी में लाया जा रहा है।

विधेयकों को पर्याप्त वाद-विवाद और समय दिए बिना ही पारित किया जा रहा है। इसका अर्थ यही है कि सरकार किसी प्रकार की चुनौती या प्रश्नों का सामना करना नहीं चाहती। ऐसे में संसद ठहर जाती है।

भारत के लोकतंत्र का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि यहाँ के शक्तिशाली नेता प्रेस कांफ्रेस के लिए प्रस्तुत नहीं होते हैं। प्रश्नों के तिरस्कार को 21वीं सदी का आधुनिक लोकतंत्र नहीं माना जा सकता।

विडंबना यह है कि संसदीय परंपराओं के अवमूल्यन से घिरी मोदी सरकार , एक नए संसद भवन के निर्माण को प्रस्तुत है। ईंट-पत्थरों के चमकते एक शानदार संसद भवन के निर्माण से बेहतर यही है कि संसद के भीतर लोकतंत्र की आत्मा के संरक्षण पर ध्यान दिया जाए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित सागारिका घोष के लेख पर आधारित। 9 सितंबर , 2020